SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

प्राचीनकाल में छात्रों की शिक्षा व्यवस्था : एक सामाजिक अध्ययन

निर्मल सिंह यादव, समाजशास्त्र,
आकाशवाणी के सामने, ठाठीपुर गाँव, गांधी रोड़, ग्वालियर, मध्यप्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author :
निर्मल सिंह यादव, समाजशास्त्र,
आकाशवाणी के सामने, ठाठीपुर गाँव, गांधी रोड़, ग्वालियर, मध्यप्रदेश, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 10/01/2020
Revised on : -----
Accepted on : 17/01/2020
Plagiarism : 02% on 11/01/2020

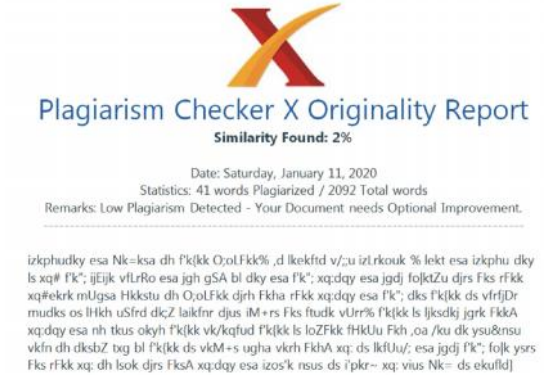
Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 2%

Date: Saturday, January 11, 2020
Statistics: 41 words Plagiarized / 2092 Total words
Remarks: Low Plagiarism Detected - Your Document needs Optional Improvement.

izkphudky esa Nk=ksa dh f'k{kk O;oLFkk% ,d lkekftd v/;;u izLrkouk % lekt esa izkphu dky ls xq# f'k"; ijEijk vfLrRo esa jgh gSA bl dky esa f'k"; xq:dqy esa jgdj fo|ktZu djrs Fks rFkk xq#ekrk mUgsa Hkkstu dh O;oLFkk djrh Fkha rFkk xq:dqy esa f'k"; dks f'k{kk ds vfrjDr mudks os lHkh uSfrd dk;Z laikfnr djus iM+rs Fks ftudk vUrr% f'k{kk ls ljksdkj jgrk FkkA xq:dqy esa nh tkus okyh f'k{kk vk/kqfud f'k{kk ls loZFkk fHkUu Fkh ,oa /ku dk ysu&nsu vkfn dh dksbZ txg bl f'k{kk ds vkM+s ugha vkrh FkhA xq: ds lkfUu/; esa jgdj f'k"; fo|k ysrs Fks rFkk xq: dh lsok djrs FksA xq:dqy esa izos'k nsus ds i'pkr~ xq: vius Nk= ds ekufld}

प्रस्तावना :–

समाज में प्राचीन काल से गुरु शिष्य परम्परा अस्तित्व में रही है। इस काल में शिष्य गुरूकुल में रहकर विद्यार्जन करते थे तथा गुरुमाता उन्हें भोजन की व्यवस्था करती थीं तथा गुरूकुल में शिष्य को शिक्षा के अतिरिक्त उनको वे सभी नैतिक कार्य संपादित करने पड़ते थे जिनका अन्ततः शिक्षा से सरोकार रहता था। गुरूकुल में दी जाने वाली शिक्षा आधुनिक शिक्षा से सर्वथा भिन्न थी एवं धन का लेन–देन आदि की कोई जगह इस शिक्षा के आड़े नहीं आती थी। गुरू के सान्निध्य में रहकर शिष्य विद्या लेते थे तथा गुरू की सेवा करते थे। गुरूकुल में प्रवेश देने के पश्चात् गुरू अपने छात्र के मानसिक, नैतिक और शारीरिक विकास का पूरा ध्यान रखता था। उसके वस्त्र भोजन, निवास, मनोरंजन आदि की व्यवस्था ठीक उसी प्रकार करता था जिस प्रकार माता–पिता अपने पुत्र के लिए करते हैं। वास्तव में शिष्य गुरू के परिवार में आकर गुरू के पुत्र के समान ही हो जाता था।

मुख्य शब्द :–

गुरुकुल, शिक्षा, शिष्य।

शिक्षा का प्रारम्भ (उपनयन संस्कार) :–

बालक की सुव्यवस्थित और सुनियोजित शिक्षा का प्रारम्भ ब्रह्मचर्य आश्रम में उपनयन संस्कार के पश्चात् होता था, जिसमें आचार्य ब्रह्मचारी को एक नये जीवन में दीक्षित करता था जिसे द्वितीय जन्म कहा गया और बह्माचारी को द्विज। उपनयन संस्कार से ब्रह्मचारी को विद्यालय शरीर और ज्ञानमुक्त मस्तिष्क प्राप्त होता था, जो माता पिता से प्राप्त स्थूल शरीर से भिन्न था। ब्रह्मचारी ज्ञान के तेज से दिव्य होता था तथा उससे क्रमशः परिपूर्ण होता था।

यह संस्कार पूर्णरूपेण शिक्षा से सम्बद्व था और बालक की शिक्षा इसके बाद से ही अविलम्ब गुरू के सानिध्य में प्रारम्भ हो जाती थी। शूद्रों के अतिरिक्त अन्य तीनों वर्णो के लिये उपनयन संस्कार अनिवार्य था। तीनों वर्णो के उपनयन संस्कार सम्पन्न करने की अवस्था भिन्न भिन्न थी। ब्राह्मण पुत्र के लिये 8 से लेकर 10 वर्ष तक के भीतर, क्षत्रिय पुत्र के लिये 11 वर्ष और वैश्य पुत्र के लिये 12 वर्ष की आयु शिक्षा प्रारम्भ के लिये निर्धारित की गयी थी।[1] प्रायः तीनों वर्णो के बालक अपने कुटुम्ब से दूर गुरू के यहॉ ब्रह्मचर्य आश्रम के अन्तर्गत शिक्षा ग्रहण करने के लिये जाते थे। ब्राह्मण बालक श्वेत केतु का उपनयन इसी अवस्था में सम्पन्न हुआ था[2] अध्ययनरत ब्राह्मण परिवारों में नैतिक शिक्षा का प्रारम्भ 7 वर्ष से ही प्रारम्भ कर दिया जाता था[3]।

गुरूकुल (आचार्य–कुल) में शिक्षा ग्रहण :–

प्रायः छात्र उपनयन संस्कार के पश्चात् ग्रह त्यागकर गुरू के सानिध्य में जाता था तथा यहीं गुरूकुल में रहकर विभिन्न विषयों की शिक्षा ग्रहण करता था[4]।

इस संबंध में छंदोग्य उपनिषद से विदित होता है कि अरूण (उदालक आरूणि) ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से गुरूकुल में जाकर शिक्षा प्राप्त करते के लिये कहा था, हे श्वेतकेतो तू गुरूकुल में जाकर ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या ग्रहण कर। हे सौम्य हमारे कुल में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं हुआ जो अध्ययन न करें और वह भी स्वयं ब्राह्मण होकर यहीं नहीं इस संबंध में जो केवल ब्राह्मणों को अपना बन्धु बतलाता है'' यह बारह वर्ष की अवस्था में गुरू के पास गया। वहॉ गुरूकुल में सब वेदों को पढ़कर चौबीस वर्ष का होकर अपने को विद्वान और अभिमानी समझाते हुए उद्वाण्ड भाव से घर वापस आया। उसके लौटने पर पिता ने उससे कहा–हे सौम्य श्वेतकेतु तू जो ऐसा अभिमानी, अपने को विद्वान समझने वाला और उद्वण्ड हो रहा है, सो क्या तूने गुरू से उस आदेश तत्व ज्ञानोपदेश को भी पूछा है जिससे अश्रुत श्रुत हो जाता है और अमत मत हो जाता है और अविज्ञात ज्ञात हो जाता है।'' चूॅकि श्वेतकेतु उस ज्ञानत्व को नही जानता था, इसलिये उसने जिज्ञासा की कि भगवन् वह तत्वज्ञानोपदेश कैसा है? उसे आप मुझे बताइये।[5] इस उदाहरण से स्पष्ट है कि गुरूकुल में निवास करके ज्ञान और विद्या प्राप्त की जाती थी। गृहसूत्रों में ब्रह्मचारी के शिक्षा ग्रहण करने पर विस्तार के विचार किया गया है। पारस्कर गृहसूत्र में यह उल्लेखित है कि आचार्य के सम्मुख जब विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण के निमित्त उपस्थित होता था तब आचार्य उससे पूछता था कि तुम किसके ब्रह्मचारी हो[6]। इस पर विद्यार्थी स्वभावतः उत्तर देता कि आपका ही ब्रह्मचारी हूँ। तत्पश्चात् आचार्य कहता था, "नहीं" तुम इन्द्र के ब्रह्मचारी हो पहले अग्नि तुम्हारा आचार्य है, बाद में हम।" फिर विद्यार्थी का दाया हाथ ग्रहण कर आचार्य उसे शिष्य के रूप में स्वीकार करते हुए कहता था– "मैं सविता की आज्ञा से तुम्हें शिष्य के रूप में स्वीकार कर रहा हूँ।" तदनन्तर विद्यार्थी के हृदय पर अपना हाथ रखकर आचार्य यह कहता था, "तुम्हारे और हमारे बीच सर्वदा प्रेम और विश्वास रहे।[7]"

उपनिषदों में "गुरूकुल" के स्थान पर "आचार्य–कुल" का प्रयोग किया गया है। "कुल" शब्द अत्यन्त सार्थक और सारगर्भित था जिससे एक परम्परा का बोध होता था। गुरूकुल के दो प्रकार विकसित हो गए, एक गृहस्थ गुरू–आश्रम और दूसरा वनस्थ प्रव्रजित गुरू–आश्रम। शिष्य अपने माता–पिता के कुल से आचार्य–कुल में जाकर आचार्य में पितृ–बुद्धि और आचार्य–पत्नी में मातृ–बृद्धि की भावना करता था पारिवारिक वातावरण का अनुभव करता था छांदोग्य उपनिशद में आचार्य– कुलवासी ''अन्तेवासी'' जैसे शब्दों के साथ–साथ ब्रह्मचर्यवास'' (अर्थात् गुरूकुल में बह्मचर्यपूर्वक विद्याग्रहण करना) का भी उल्लेख हुआ है[8] कृष्ण और बलराम ने सन्दीपनि मुनि के आश्रम में शिक्षा ग्रहण की थी।[9] कच ने शुक्राचार्य के कुल में विद्यार्जन किया था।[10]

महाकाव्यों से गुरूकुलों का सन्दर्भ मिलता है, जो शिक्षा और विद्या के विख्यात अधिष्ठान थे। भरद्वाज और वाल्मीकि के आश्रम उच्च कोटि के गुरूकुल थे।[11]

महाभारत में उल्लिखित है कि मार्कण्डेय और कृष्ण ऋषि के आश्रम शिक्षा के प्रधान विद्या–स्थल थे।[12] जहाँ विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी। इन आचार्यों के शिक्षा मण्डलों में बहुसंख्यक छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे। दुर्वासा ऋषि जब कुरू–नरेश से मिलने गए तब उनके साथ 10 हजार शिष्य थे। यह ऋषि की विद्वता और लोकप्रियता का परिचायक था। इसके अतिरिक्त इन उद्वरणों से यह भी स्पष्ट होता है कि गुरूकुल की महत्ता समाज में पूर्णतः स्थापित हो चुकी थी। और द्विजों के अधिकांश बालक इन आश्रमों में शिक्षा–प्राप्ति के लिए जाते थे। स्मृतियों के अनुसार भी छात्र गुरूकुल में रहकर विद्या ग्रहण करता था।[13] विद्यार्थी का गुरूकुल में प्रवेश करना उसके नवीन जन्म के समान था।[14] जो उसके जीवन की गौरवमयी घटना माना जाता था।

महान् विद्वान आचार्य सत्यकाम जाबाल के कुछ (शिक्षाश्रम) में उपकोसल कामलापन ने शिक्षार्थी के रूप में 12 वर्ष ब्रह्मचर्यपूर्वक व्यतीत किया था एवं इस अवधि में उसने निरन्तर अपने आचार्य की अग्नियों की परिचर्या सम्पन्न की थी।

तत्कालीन समाज में आचार्य कुल की अग्नि परिचर्या धार्मिक कृत्य के रूप में स्वीकृत थी। जिसे शिष्यगण परिपूर्ण किया करते थे।

सत्यकाम जाबाल स्वयं आचार्य हाद्रिभुत गौतम के कुल में अन्तेवासी बनकर ज्ञान–प्राप्ति के निमित गया था[15] उपनिषद में विवृत्त है कि उसका उपनयन संस्कार करके चार सौ कोश और दुर्बल गौओं को पृथक निकाल निकालकर आचार्य ने उससे कहा था कि वह इन गौओं का अनुसरण करे अर्थात् जहॉ–जहॉ वे गौएँ चरती हुई जायें वह उनके पीछे–पीछे रहकर उनकी रक्षा करें। गुरू ने उन गौओं को ले जाते हुए सत्यकाम से कहा था जब तक ये गौएँ एक सहस्त्र न हो जायें तब तक वह न लौटें। तदन्तर सत्यकाम कई वर्षों तक उन गौओं को चराते और सेवा करते हुए प्रवास में ही रहा, जबकि वे गौएँ एक सहस्त्र नहीं हो गईं।[16] आचार्य की आज्ञा का नतमस्तक होकर अक्षरणः पालन करने का यह अद्वितीय उदाहरण है। स्पष्ट है कि शिष्य अपने आचार्य के आदेश का सर्वदा पालन करने का प्रयास करता था।

गुरूकुल अथवा आचार्य कुल में रहकर शिक्षा ग्रहण करने की प्रथा प्राचीनकाल में बराबर चलती रही। चन्द्रगुप्त मौर्य ने तक्षशिला मे चाणक्य के सान्निध्य में रहकर शिक्षा ग्रहण की थी। बौद्ध ग्रन्थों से भी ब्राह्मण आचार्यों के कुलों का विवरण मिलता है, जिससे स्पष्ट होता है कि उस युग में भी लोग गुरूकुलों में रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे।[17]

चम्पा निवासी दिशा प्रमुख आचार्य के आश्रम में पाँच सौ छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे। कोशल के सुनेत और सेल उस युग के अत्यन्त विख्यात आचार्य थे।[18] मिथिला का ब्रह्मायु वैवुष्य ब्राह्मण अनेकानेक शिष्यों का आचार्य था जिसके अन्तेवासी भी उसी कोटि के विद्धान थे।[19] गुप्त–काल में भी गुरूकुल की शिक्षा निबधि रूप से चलती रही। ब्राह्मण आचार्यों के निवास विद्यार्जन के प्रधान केन्द्र थे। गुप्त अभिलेखों से विदित होता है कि आचार्य ब्राह्मर्णों को ग्राम दान में दिए जाते थे। आचार्य देवशर्मा को ब्रह्मपूरक ग्राम दान में प्रदान किया गया था।[20] कालिदास के ग्रन्थों में अनेक ऐसे आश्रमों का उल्लेख मिलता है। जहाँ बौद्धिक उत्कर्ष के निमित्त लोग जाते थे और विभिन्न विषयों में पारंगत होते थे। बाण ने हर्षचरित् में स्वयं लिखा है। कि वह विद्या–प्राप्ति के निमित अनेक वर्षो तक गुरू के आश्रम में रहा था।

ग्यारहवीं सदी का लेखक अलबीरूनी भी गुरूकुल का उल्लेख करता है। उसके अनुसार शिष्य दिन–रात गुरू की सेवा में तल्लीन रहा करता था[21] मध्य कालीन अनेक लेखकों से विदित होता है कि गुरूकुल की परिपाटी समाज में थी[22] मध्य युग में बहुधा ब्राह्मण वर्ग शिक्षा के निमित आचार्यों के सान्निध्य में जाते थे।

गुरू शिक्षा व्यवस्था से अर्थ उस शिक्षा व्यवस्था से है जिसमें गुरू का घर ही स्कूल था। छात्र अपने गुरू के साथ रहकर शिक्षा ग्रहण किया करते थे।

गुरू अपने शिष्यों को अपनी संतान मानते थे। शिष्य भी गुरू को माता–पिता से बढ़कर मानता था। वह यह अच्छी तरह समझता था कि पिता ने तो उसे शरीर देकर मनुष्य ही बनाया है, परन्तु गुरू उसे मनुष्यत्व से ऊपर उठाकर देवत्व की ओर ले जाता है। वह गुरू के प्रति असीम प्रेम तथा श्रद्धा रखता था।

गुरू के कर्तव्य :–

गुरूकुल में प्रवेश देने के पश्चात् गुरू अपने छात्र के मानसिक, नैतिक और शारीरिक विकास का पूरा ध्यान रखता था। उसके वस्त्र भोजन, निवास, मनोरंजन आदि की व्यवस्था ठीक उसी प्रकार करता था जिस प्रकार माता–पिता अपने पुत्र के लिए करता है। वास्तव में शिष्य गुरू के परिवार में आकर गुरू के पुत्र के समान ही हो जाता था।

गुरू का कर्तव्य केवल पढ़ाना ही नहीं था। उसका धर्म था कि वह प्रत्येक शिष्य को सदाचारी बनाये उसके आचरण की रक्षा करें तथा उसका चरित्र गठन करें। गुरू परिवार में गरीब–अमीर का कोई भेदभाव नहीं था। सबके साथ एक जैसा बर्ताव किया जाता था। गुरू छात्रों के दुःख–सुख को अपना दुःख–सुख मबतन था। गुरू छात्रों की त्रिशाला शान्त करता था।

आचार्य गुरू के गुण :–

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में आचार्य के निम्न गुणों का उल्लेख है :–

1. संयमी हो।
2. ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करने वाला हो।
3. विविध विषयों का ज्ञाता हो।
4. कठोरता से अनुशासन का पालन कराने वाला हो।
5. शिष्यों को दुर्गुणों से दूर रखे।
6. शिष्यों को पापों से बचाए।
7. शिष्यों के दोषो को नष्ट करने वाला हो।
8. गुरू में बुद्धि का भंडार हो।
9. चरित्रवान हो।
10. हृदय निर्मल हो।
11. विषय को मधुर बनाने वाला हो।
12. शिष्य को पुत्रवत समझे।
13. तत्वदर्शी हो।
14. परम्पराओं की रक्षा करने वाला हो।
15. छात्रों की जिज्ञासा शान्त करने वाला हो।
16. छात्रों के प्रश्नों का ठीक उतर देने वाला हो।

निष्कर्ष :–

गुरुकुल में गुरू के सान्निध्य में छात्रों द्वारा प्राप्त की जाने वाली शिक्षा आधुनिक शिक्षा से भिन्न होती थी तथा गुरू के द्वारा छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए गुरू अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देता था।

वर्तमान समय में छात्र छात्रावास में रहकर विद्यार्जन करते हैं वहीं प्राचीनकाल में छात्र गुरूकुल में गुरू के सान्निध्य में विद्यार्जन किया करते थे। छात्रों द्वारा प्राप्त की जाने वाली विद्या चरित्र निर्माण करने वाली तथा नैतिकता स्थापित कर छात्रों में राष्ट्रप्रेम, परस्पर स्नेह की भावना, समता एवं सद्भाव के गुणों से ओतप्रोत थी। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है आज शिक्षा का बाजारीकरण हो चुका है एवं गुरू के प्रति सादर सद्भावना का अभाव देखा जा सकता है। वहीं प्राचीनकाल में छात्रों एवं उनके माता–पिता द्वारा गुरू को अति आदरणीय मानकर गुरू को सर्वोच्च सम्मान का दर्जा दिया जाता था।

संदर्भ सूची :–

1. *तैतरीय उपनिषद् 1.11 उपनिषद निर्णय सागर प्रेस, बम्बई गीता प्रेस, गोरखपुर।*
2. *मनु., 2.36 कुल्लूक भट्ट की टीका सहित बम्बई, 1946 ।*
3. *छान्दोग्य उपनिषद् 6.2.1 ।*
4. *आपस्तम्ब गृहसूत्र : सुदर्शनाचार्य की टीका सहित मैसूर गर्वनमेन्ट संस्कृत लाईब्रेरी सीरीज, 2001।*
5. *विष्णुपुराण 3.10.12 बम्बई 1889: विल्सन, 5 लंदन 1864–70 गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2009 ।*
6. *छान्दोग्य उपनिषद, 6.1.1–3 ।*
7. *पारस्कर गृहसूत्रः गुजराती प्रेस संस्करण 1917।*
8. *आश्वलायन ग्रहसूत्र, 1.20.4 नारायण की टीका सहित निर्णय सागर प्रेस बम्बई, 1894।*
9. *छान्दोग्य उपनिषद 2.23.1।*
10. *विष्णु पुराण 3.10.12 बम्बई 1889 बिल्सन पांच भाग लंदन 1864–70 गीताप्रेस, गोरखपुर, सन 2009।*
11. *मत्स्यपुराण 26.1 आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज पूना 1907।*
12. *रामायण 6.123.51 2.55.9–11, मद्रास 1933, गीताप्रेस गोरखपुर।*
13. *महाभारत 3.271.48 1.70.18 नीलकंठ की टीका सहित पूना 1929–33 गीताप्रेस गोरखपुर।*
14. *मनुस्मृति 2.69 कुल्लूक भट्ट की टीका सहित बम्बई 1946।*
15. *महाभारत 5.44.6 नीलकंठ की टीका सहित पूना 1929–33 गीताप्रेस गोरखपुर।*
16. *छान्दोग्य उपनिषद 4.10–15।*
17. *छान्दोग्य उपनिषद 4.4.5।*
18. *जातक 6, पृष्ठ 32: सम्पादक फाउल्सबोल 1877–97 कैम्ब्रिज अनुवाद 1895–1913 हिन्दी अनुवाद, भदन्त आनन्द कौशल्यायन।*
19. *अंगुत्तर निकाय पृष्ठ 371 संपादक आर मोरिस और ई. हाडी लंदन 1883–1900।*
20. *मज्झिम निकाय, 2,133–134।*
21. *फ्लीटः कार्पस इंस्क्रिप्शन्स इंडिकेरम, भाग 3, अभिलेख 56 ।*
22. *ग्यारहवीं सदी का भारत पृष्ठ 168, 1992 ।*

****